MAH/MUL/03051/2012
ISSN-2319 9318

Special Issue Feb. 2018

International Multilingual Research Journal ®

Vidyawarta

'आदिवासी साहित्य विमर्श'

डॉ.बापू जी.घोलप
संपादक

डॉ.भरत शेणकर
अतिथि संपादक

IMPACT 5.131 iijif FACTOR

Scanned by CamScanner

MAH/MUL/ 03051/2012

ISSN :2319 9318

आंतरविद्याशाखीय बहुभाषिक शोध पत्रिका

विद्यावार्ता™

विशेषांक, फरवरी–२०१८

सत्यनिकेतन संचालित

अॅड. मनोहरराव नानासाहेब देशमुख कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय, राजूर, जि. अहमदनगर

नॅक पुनर्मूल्यांकित 'ए' श्रेणी

हिंदी विभाग एवं

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित

राष्ट्रीय संगोष्ठी

आदिवासी साहित्य विमर्श

डॉ. बाबासाहेब देशमुख
प्राचार्य

डॉ. भरत शेणकर
अध्यक्ष, हिंदी विभाग

प्रा. बबन थोरात
हिंदी विभाग

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205

Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.

At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed
Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295
harshwardhanpubli@gmail.com, vidyawarta@gmail.com

All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors / www.vidyawarta.com

Scanned by CamScanner

MAH MUL/03051/2012
ISSN: 2319 9318
UGC Approved Sr.No.62759
Vidyawarta®
February 2018 Special Issue

Index

1) हिंदी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी विमर्श
श्री. आदिनाथ शेषराव भाकड, पुणे || 10

2) हिंदी कविता में चित्रित आदिवासी स्त्री–विमर्श
डॉ. अशोक द्रोपद गायकवाड, अहमदनगर || 12

3) "पीली छतरी वाली लड़की" उपन्यास में व्यक्त आदिवासी विमर्श
डॉ. कैप्टन बाबासाहेब माने, जुन्नर, पुणे. || 15

4) २१ शती के उपन्यास में आदिवासी विमर्श ('ग्लोबल गाँव के देवता' के संदर्भ में)
शोधार्थी चव्हाण स्वाती विष्णू, पुणे || 21

5) सभ्यता द्वारा संस्कृति के शोषण की अनुगूँज: आदिवासी कविता
डॉ. गोरख निवृत्ती थोरात, पुणे || 25

6) हिंदी उपन्यासों में आदिवासी नारी की सामाजिक स्थिति
सोनल बो–हाडे, मुंबई || 28

7) आदिवासी साहित्य विमर्श: एक अध्ययन
डॉ. के.वी.कृष्णमोहन, विजयवाडा || 30

8) आदिवासी समाज का दस्तावेज: आप यहाँ है
प्रा. घुलेश्वर शिवराज, सेलू – डॉ. सचिन कदम, संगमनेर, || 34

9) हिंदी कहानी में चित्रित आदिवासी विमर्श
प्रा. ललिता भाऊसाहेब घोडके, ता. अकोले, जि. अहमदनगर || 37

10) 'हवाओं का विद्रोह' में आदिवासी विमर्श
प्रा. पटेकर विश्वनाथ चंद्रकांत, लोणंद, ता. खंडाळा जि.सातारा || 40

11) हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श ('अल्मा कबूतरी' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)
डॉ.दत्तात्रय वामनराव मोहिते, तह.जुन्नर, जि.पुणे || 42

www.vidyawarta.com/03 | http://www.printingarea.blogspot.com

Scanned by CamScanner

तुम इतने सीधे क्यों हो चुड़का सोरेन?"११

निर्मला पुतुल आदिवासी लड़कियों को फुसलाकर भगा ले जाते मैदानी लोगों के बारे में चुड़का को सतर्क करती हैं–

"वह कौन–सा जंगली जानवर था चुड़का सोरेन
जो जंगल में लकड़ी बीनने गई
तुम्हारी बहन मुंगली को उठाकर ले भागा।"१२

सन्दर्भ सूची –

१. नगाड़े की तरह बजते शब्द – निर्मला पुतुल, पृष्ठ सं. २४
२. आदिवासी स्वर और शताब्दी – सं. रमणिका गुप्ता, पृष्ठ सं. २६
३. नगाड़े की तरह बजते शब्द – निर्मला पुतुल, पृष्ठ सं. १२
४. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी – सं. रमणिका गुप्ता, पृष्ठ सं. ९८
५. नन्हें सपनों का सुख – सरिता बड़ाइक, पृष्ठ सं.१०८
६. अपने घर की तलाश में – निर्मला पुतुल, पृष्ठ सं. ३१
७. http://jajbapradeep-blogspot-in/2016/01/blog&post-html
८. पहाड़ हिलने लगा है–वहारू सोनवणे, पृष्ठ सं.१९
९. नगाड़े की तरह बजते शब्द – निर्मला पुतुल, पृष्ठ सं. ५४
१०. नगाड़े की तरह बजते शब्द, इस्पतिका, जनवरी–जून २०१२, पृष्ठ सं. २२७
११. 'मूक आवाज'– http://mookaawaz-blogspot-in/2014/04/blog&post_140-html
१२. वही

06

"पीली छतरी वाली लड़की" उपन्यास में व्यक्त आदिवासी विमर्श

डॉ. कैप्टन बाबासाहेब माने,
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
श्री शिव छत्रपति महाविद्यालय, जुन्नर, पुणे.

समकालीन युग में आदिवासी विमर्श की चर्चा जोरों पर है। शिक्षा के क्षेत्र में विविध संगोष्ठियों के माध्यम से आदिवासी जन–जीवन की खूबियों और खामियों को बड़ी गंभीरता से व्यक्त किया जा रहा है। साहित्यकारों एवं विचारकों का मन आदिवासियों की ओर अधिक आकर्षित होने लगा है। ऐसा क्यों हो रहा है? आज इक्कीसवीं सदी में आदिवासी विमर्श की याद ज्यादा क्यों आ रही है ? इसके कई कारण हैं। इक्कीसवीं सदी में भारतीय समाज के विविध वर्गों की सामाजिक, भौतिक, राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों में काफी विकास हुआ है। परंतु इन वर्गों की अपेक्षा आज भी आदिवासी समाज उतना विकसित नहीं दिखाई देता, जितना कि हो जाना चाहिए था। इसीलिए समतावादी समाज की अपेक्षा रखने वाले और समाजवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास रखने वाले प्रत्येक चिंतक, विचारक, समाज सेवी और साहित्यकार का ध्यान आदिवासियों के जीवन की ओर अधिक केंद्रित हो रहा है। ताकि आदिवासी जन–जीवन में संवर्ण समाज की तरह उचित परिवर्तन आ जाए। इस समुदाय पर हो रहे अन्याय–अत्याचार समाप्त हो जाएं। इसे भी व्यवस्था की मुख्य धारा के साथ विकास के मिठे फल चखने को मिले। इसके उत्थान

Scanned by CamScanner

की ओर राजनैतिक व्यवस्था का ध्यान ईमानदारी से चला जाए और भारतवर्ष में विकास की समानता स्थापित हो। यहां की हर एक जाति को आदर एवं सम्मान से जीने का हक मिले। इन्हीं वजहों से आजकल आदिवासी विमर्श की चर्चा हर क्षेत्र में जोरो–शोरों के साथ हो रही है।

इसी की एक झांकी हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार उदयप्रकाश द्वारा रचित "पीली छतरी वाली लड़की" उपन्यास में देखने को मिलती है। इस उपन्यास का प्रथम संस्करण २००५ में निकला है। तब से आज तक इसके तीन संस्करण निकल चुके हैं। इसमें उदयप्रकाश जी ने आदिवासी एवं पिछड़ी जन–जातियों में पले युवकों को किस तरह से सताया जाता है? उनके एवं उनकी जाति के संदर्भ में संवर्णों के मन में कौन–कौन–से विचार निहित होते हैं? ये युवक जिस विश्वविद्यालय में पढ़ते हैं, उस विश्वविद्यालय के कुलपति से लेकर छात्रों तक सभी संवर्ण जातियों के लोग किस तरह से इन्हें छलते हैं? आदि बातों का वास्तविक एवं प्रभावशाली चित्रण किया है और इन युवाओं के माध्यम से ही लेखक ने आदिवासी विमर्श को व्यक्त किया है। प्रस्तुत उपन्यास में संवर्ण जातियों के द्वारा हो रही प्रताड़ना को ही नहीं दिखाया गया है, बल्कि उनके द्वारा मिलने वाले सहयोग को भी दर्शाया गया है। उपन्यास का नायक राहुल है। वह अज्ञात कुल का युवा है या एक तरह से पिछड़ी या आदिवासी जाति का युवा है। उसने एक नामी–गिरामी विश्वविद्यालय में आर्गेनिक केमिस्ट्री से एम.एस–सी पूरी कर ली है। परंतु अचानक उसमें एंथ्रोपोलॉजी से एम.ए. करने का भूत सवार हो जाता है। इसका कारण उसका फुफेरा भाई किन्नू दा है। किन्नू दा एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर का नृत्ववशास्त्री और फिलहाल एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया का डायरेक्टर जनरल था। कई बार वह राहुल के घर आता था। इसी कारण राहुल पर उसके विचारों का प्रभाव कुछ अधिक पडा हुआ है। शायद इसीलिए राहुल में एंथ्रोपोलॉजी से एम.ए. करने का भूत सवार हो गया है। किन्नू दा के बारे में राहुल ने यह भी सुना है कि उसकी आदिवासियों पर पेंगुइन से एक किताब प्रकाशित हो चुकी है, जिसने पूरी दुनिया में तहलका मचाया है। तहलका इसलिए मचाया है क्योंकि इस किताब में आदिवासियों के जीवन को प्रामाणिक रुप से उद्घाटित किया है। इसी के चलते राहुल ने एम. ए. एंथ्रोपोलॉजी में दाखिला लिया है। किन्नू दा और उसकी किताब के माध्यम से राहुल ने आदिवासी जन–जीवन को गहराई से जाना एवं समझा है। उसे यह पता चल गया है कि इतिहास में आदिवासी नायकों और पिछड़ी जन–जातियों के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया गया है। अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष में केवल संवर्ण जातियों के नायकों को ही इतिहास में स्थान दिया गया है। आदिवासी, दलित या पिछड़े वर्ग के नायकों और उनकी जातियों का नामोल्लेख तक नहीं किया गया है। जब किन्नू दा जैसे आदिवासी लेखकों की किताबें प्रकाश में आई, तब जाकर आदिवासी नायकों और उनकी जातियों का संघर्ष तथा योगदान सामने आया। इसके पहले उनका संघर्ष केवल ष्फोकलोरश यानी ष्लोकवार्ताश तक ही सीमित था। इतिहास के इस पक्षपाती व्यवहार को उपन्यासकार ने राहुल के माध्यम से यूं उजागर किया है "राहुल ने सुना था कि उनकी (किन्नू दा) आदिवासियों पर एक ऐसी किताब पेंगुइन से आई है, जिसने दुनिया में तहलका मचा रखा है। इस किताब के आने के पहले तक सब लोग यही जानते थे कि अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई सिर्फ ब्राह्मणों, ठाकुरों, बनियों या हिंदू–मुसलमानों ने ही लड़ी है। अब तक के इतिहासकारों ने जिन नायकों का निर्माण किया था, वे सब इन्हीं पृष्ठभूमियों के थे। उनमें आदिवासी और दलित लगभग नहीं थे।"१ उक्त कथन से स्पष्ट है कि आदिवासी, पिछड़ी एवं दलित जन–जातियों के प्रति इतिहासकारों का दृष्टिकोण पक्षपाती रहा है। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई में अनेक आदिवासी, पिछडे एवं दलित वर्गों के नायकों और

Scanned by CamScanner

उनके समुदायों ने योगदान दिया था। उन्होंने अपने घर–बार छोड़कर और समय–समय पर प्राणों को त्यागकर अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किया था। फिर भी इतिहास में उनका नामोल्लेख तक नहीं किया गया। यह बात किसी भी संवेदनशील समाज को जरुर खटकती है। ऐसा क्यों हुआ ? इस पर बहस करने की बजाए, आगे ऐसा न हो। इस पर इतिहासकारों और विचारकों को ध्यान देना चाहिए। चाहे किसी भी जाति, धर्म, पंथ या वर्ग के नायक और उनका समाज हो, अगर उन्होंने देश के नवनिर्माण में या देशहित में योगदान दिया है, तो उनका नाम इतिहास में अवश्य दर्ज होना चाहिए। ताकि अपने पूर्वजों के कार्यों से प्रेरणा लेकर भावी पीढी भी देशहित में जुट जाए। अगर उनके साथ इसी तरह से पक्षपाती व्यवहार होता रहेगा, तो देश की समस्त जातियों में फूट एवं कलह निर्माण होगा और अंततः भारतवर्ष के टुकड़े होने में देर नहीं लगेगी। इस तथ्य पर समाज के हर प्रबुद्ध वर्ग को गंभीरता से सोचने की आवश्यकता है। इसका दूसरा पहलू यह है कि जिस देश में जिस समाज की सत्ता होगी, उस देश का इतिहास उसी समाज के अनुसार निर्माण किया जाता है। इसलिए भी इतिहास में ऐसी अनेक जातियां जो पिछड़ी, आदिवासी, दलित या सत्ता से वंचित होती हैं, उनके लिए कोई स्थान नहीं दिया जाता है। अतः ऐसे अधूरे इतिहास को संपूर्ण इतिहास नहीं कहा जाना चाहिए। असली इतिहास तो वह होता है, जिसमें सभी जाति, धर्म, पंथ या वर्ग को स्थान दिया गया हो। ऐसे ही संपूर्ण इतिहास का निर्माण होना चाहिए।

आदिवासी आदिम जमाने से जंगलों, गिरीकंदराओं, पहाड़ों, वनों एवं जंगलों में रहता आया है। उसकी अपनी विशेषताएं है, परंपराएं हैं, जीने के तरीके हैं। आज भारत के मेघालय, त्रिपुरा, असम, मणिपुर, नागालैण्ड, उड़ीसा, बिहार, झारखंड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, गोवा आदि अनेक राज्यों में अलग–अलग आदिवासी जन–जातियां पाई जाती हैं। इनकी रुढ़ि–परंपराएं, रीति–रिवाज, त्योहार, गीत आदि अलग–अलग हैं। ये जंगलों और वनों में रहती हैं। प्रकृति के साथ इनका गहरा लगाव है। इनकी जीविका अधिकतर जंगलों पर निर्भर रहती है। पहले जमाने में लकड़ी बेचना, तेंदू पत्ता बेचना, शहद बेचना, आयुर्वेदिक जड़ी–बुटियां बेचना आदि इनके प्रमुख व्यवसाय हुआ करते थे। आज कल कई आदिवासी जन–जातियां खेती करने लगी हैं। कृषि से जुड़े व्यवसायों में भी प्रवेश कर चुकी हैं। जैसे कि बकरी पालन, कुक्कुट पालन, पशु पालन आदि। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे–मोटे व्यवसायों में भी इनकी संख्या बढ़ने लगी है। इक्कीसवीं सदी के इस दौर में अनेक आदिवासी एवं पिछड़ी जन–जातियों के लोग देश के उच्च पदों पर भी आसीन दिखाई पड़ते हैं, फिर भी इनकी संख्या अन्यों की तुलना में काफी कम नजर आती है। आदिवासियों की विशेषताओं को उपन्यासकार ने किन्नू दा के माध्यम से यूं उजागर किया है–"किन्नू दा ने राहुल से कहा, आदिवासियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी ज़रुरते सबसे कम हैं। वे प्रकृति और पर्यावरण का कम से कम नुकसान करते हैं। सिंहभूम, झारखंड़, मयुरभंज, बस्तर और उत्तरपूर्व में ऐसे आदिवासी समुदाय हैं जो अभी तक छिटवा या झूम खेती करते हैं और सिर्फ कच्ची, भुनी या उबली चीजें खातें हैं। तेल में फ्राइ करना तक वे पसंद नहीं करते। वे प्राकृतिक मनुष्य हैं।" २ उक्त कथन से साफ है कि आदिवासी भोले–भाले, सीधे–सादे, भौतिक सुख–सुविधाओं के निर्लोभी, आत्मीयता रखने वाले, अपनी ही जिंदगी में खोने वाले, प्रकृति के असली रक्षक होते हैं। इनकी जरुरतें अन्यों से कम होती हैं। इन्हीं से पर्यावरण संतुलन में फायदा होता रहा है। प्रकृति इनकी नसों में इस तरह रची–बसी होती है कि कई अवसरों पर ये प्रकृति की पूजा करते भी नजर आते है। इनके पास प्राकृतिक वन–औषधियों के ज्ञान का भंडार संचित है। आज भी ये कई बीमारियों का इलाज वनौषधियों के द्वारा स्वयं ही करते नजर

Scanned by CamScanner

आते हैं। प्रकृति प्रदत्त चीजों का सेवन करने से ये शहरी लोगों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ और निरोग जीवन जीते हैं। कई आदिवासी महुआ से निकाली गई शराब का सेवन भी करते हैं। समय के अनुसार इनमें भी परिवर्तन आने लगा है। अब कई आदिवासी समाज पहले जैसे पिछड़े नहीं रह गए हैं। मुख्य धारा के प्रभाव के चलते इनके जीवन में भी परिवर्तन आने लगा है। आजकल का अधिकांश आदिवासी समुदाय तकनीकी दुनिया से परिचित होने लगा है। बहुसंख्य आदिवासी युवाओं के पास मोबाइल फोन आ गया है। वे कंम्प्यूटर का ज्ञान भी ग्रहण कर रहे हैं। इंटरनेट के माध्यम से अनेक नव–नवीन चीजों को देख पा रहे हैं। कई आदिवासी इलाकों में आधुनिक तरीके से उत्तम प्रकार की खेती की जा रही है। अनेक समाज सेवक, समाज सेवी संगठन, स्थानीय सरकारें एवं केंद्र की सरकारें इनके जीवन में उचित परिवर्तन लाने की दिशा में काम करी रही हैं। इसी के चलते इनके जीवन में बदलाव दिखाई देने लगे हैं।

अनेक सदियां गुजर गई, समय ने करवटें बदली, आधुनिकता की हवा चली, उत्तराधुनिकता का दौर चला, आज इक्कीसवी सदी का दौर चल रहा है, फिर भी अधिकांश आदिवासी समुदायों ने अपनी परंपराओं, अपने रीति–रिवाजों और अपनी बोली–भाषाओं को बड़े ही प्यार से जतन करके रखा है। अनेक कठिनाईयों और मुश्किलों के बाद भी उन्होंने अपनी विशेषताओं को कायम रखने में अब तक तो जरुर सफलता हासिल की है। इसके आगे क्या होगा? इसके बारे में हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि जब तक आदिवासी जिंदा रहेगा, अपनी भाषा में बोलता रहेगा, अपनी आदर्श परंपराओं का जतन करता रहेगा, तब तक उसकी विशिष्ट पहचान कायम बनी रहेगी। महाराष्ट्र के पुणे और अहमदनगर जिलों में महादेव कोली या ठाकर नामक आदिवासी जन–जाति पाई जाती है। उसकी अपनी बोली–भाषा है। जिसे ठाकरी बोली कहा जाता है। कोंकण के आदिवासियों में कोंकणी के अतिरिक्त आग्री बोली भी पाई जाती है। मध्यप्रदेश के कई आदिवासी समुदायों में भीली, कोरकू आदि बोली–भाषाओं का प्रयोग होता है। अनेक सदियों के बाद भी आदिवासियों ने अपनी बोली–भाषाओं को आज तक कायम रखा है। यह अपने–आप में गौरवान्वित करने वाली बात है। इन भाषाओं के अस्तित्व के संदर्भ में उपन्यासकार ने राहुल के माध्यम से कहा है कि – "कोई भी भाषा, जब तक कोई समुदाय उसे बोलता है, विलुप्त नहीं होती। योरोप की भाषाओं के इतने प्रसार और प्रचार के बावजूद, शताब्दियों तक चलने वाले औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी पराधीनताओं के बावजूद, अफ्रिका और एशिया की छोटी–छोटी आदिवासी भाषाएं तक मिटाई नहीं जा सकीं। वे आज भी जिंदा है। ष्होश जैसी आस्ट्रिक परिवार की भाषा, जिसे बहुत थोड़े–से आदिवासी बोलते हैं, आज तक मौजूद है. ..किन्नू दा ने कहा था।"३ उक्त कथन से स्पष्ट है कि अनेक सदियां बीत जाने के बाद भी आदिवासियों ने अपनी बोली–भाषाओं को बड़ी संजीदगी से सहेज कर रखा है। आज के बाजारवादी और अंग्रेजी भाषा के प्रभावकारी दौर में भी आदिवासियों का उक्त भाषा–प्रेम स्पष्ट दिखाई देता है। परंतु दूसरी ओर आदिवासियों को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि केवल अपनी ही भाषा के प्रति निष्ठा रखकर काम चलने वाला नहीं है। आज के दौर में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उपयुक्त भाषाओं का ज्ञान भी उन्हें अवश्य ग्रहण करना चाहिए। ताकि रोजगार प्राप्ति में आसानी हो और दुनिया के साथ कदम–से–कदम मिलाकर चलने में उन्हें कामयाबी मिले। क्योंकि रोजगार से ही आर्थिक संपन्नता आती है और जीवन का स्तर ऊंचा होता है। इसलिए जरुरी है कि आदिवासियों को अपनी भाषा के साथ–साथ अन्य भाषाओं का भी ज्ञान ग्रहण करना चाहिए।

उपन्यासकार ने जहां एक ओर आदिवासियों की इन खूबियों को उजागर किया है, वहीं दूसरी ओर आदिवासियों पर होने वाले

Scanned by CamScanner

अन्याय–अत्याचारों को भी उद्घाटित किया है। आदिवासियों को आज तक अनेक संवर्ण जातियों ने ठगा है। उन पर अनेक तरह के अन्याय–अत्याचार किए हैं। फिर भी उन्होंने कभी अपने–आप को ठगा हुआ महसूस नहीं किया। १९ वीं और २० वीं सदी में जब ईसाई मिषनरियों और मुस्लिम संगठनों ने अपने–अपने धर्मों का प्रचार–प्रसार करना शुरु किया। तब उनका शिकार अधिकतर यहां की आदिवासी, पिछड़ी, दलित एवं शोषित जन–जातियां रही हैं। इनकी देखा–देखी हिंदू धर्म के प्रसारकों ने भी अपने धर्म को बढ़ावा देने हेतु इन जातियों को शिकार बनाना शुरु किया। परिणाम स्वरुप अनेक पिछड़ी, आदिवासी एवं दलित जातियों के लोगों ने ईसाई, मुस्लिम एवं हिंदू धर्म स्वीकार किया। आज भारत में ऐसे असंख्य आदिवासी एवं पिछडे वर्ग के लोग दिखाई देते हैं, जो धर्म परिवर्तन करके जी रहे हैं। उनकी अनेक पीढ़ियां इन्हीं बदले हुए धर्मों में गुजरी हैं। आज भी इनमें से कईयों के नाम उनके मूल धर्म के अनुसार रखे जाते हैं, परंतु कुलनाम परिवर्तित धर्म के अनुसार होते हैं। कईयों के कुलनाम वहीं होते हैं, जो पहले थे, परंतु नाम बदल दिए जाते हैं। इस उपन्यास का पात्र शैलेंद्र जॉर्ज के नाम का भी यही हाल है। शैलेंद्र का पिता पहले हिंदू था। तीस साल पहले उसने ईसाई धर्म स्वीकारा था। इसलिए शैलेंद्र का नाम हिंदूओं के अनुसार है और उसका कुलनाम ईसाई धर्म के अनुसार है। उपन्यास का नायक राहुल जब संवर्ण जाति की लड़की अंजली जोशी के प्यार में पड़कर एंथ्रोपोलॉजी से एम.ए. करना छोड़कर हिंदी से एम. ए. करने के लिए हिंदी विभाग में दाखिला लेता है। तब उसकी दोस्ती शैलेंद्र जॉर्ज और शालिगराम से सबसे पहले हो जाती है। क्योंकि इस विभाग में केवल ये तीन ही छात्र पिछड़ी एवं आदिवासी जन–जाति के थे। बाकी सभी छात्र संवर्ण जाति के थे। अत: तीनों की दोस्ती घनी हो जाती है। इसी के चलते शैलेंद्र जॉर्ज और शालिगराम दोनों ही राहुल को अपने और अपने समाजों पर संवर्णों के द्वारा किए गए अत्याचारों की यथोचित जानकारी देते हैं। शैलेंद्र जॉर्ज ने राहुल को बताया था कि "उसके पिता जब तक हिंदू थे, तब तक डोम थे। तीस साल पहले वे कनवर्ट हुए। शालिगराम जाति से कोरी था। वह बताता था कि सवर्णों ने और खासतौर पर ब्राहमणों ने ऐसी कहावतें और किस्से गढ़े रखे थे, जो कोरियों की मूर्खता और उनकी बुद्धिहीनता को कोरी जाति का अनिवार्य सहजात चरित्र सिद्ध करने के लिए गढ़े थे।"४ उक्त कथन से स्पष्ट है कि आदिवासी और पिछडे वर्गों के प्रति संवर्णों का उक्त व्यवहार बहुत ही गिरा हुआ था। एक ओर तो संवर्णों के द्वारा इनका शारीरिक एवं आर्थिक शोषण किया ही जाता था, साथ ही मानसिक तौर पर भी इन्हें सताया जाता था। इनके बारे में अनेक तरह के घृणास्पद किस्से भी फैलाए जाते थे। संवर्णों की ये हरकतें केवल यहीं तक सीमित नहीं थी, बल्कि उनका दायरा और भी बढ़ गया था। कभी ये रुपये–पैसे का लालच देकर, कभी दबाव डालकर, तो कभी जबरदस्ती करके आदिवासी एवं पिछड़ी जातियों की युवतियों को अपनी हवस का शिकार बनाने लगे थे। एक ओर से स्थानीय 'मुखिया, बनिये, व्यापारी और गुंडें किस्म के आदिवासी लोग भी अपनी ही जाति के गरीब और भोले–भाले आदिवासियों की युवतियों पर जुल्म करने लगे थे, तो दूसरी ओर प्रशासन की ओर से स्थानीय सरकारी कर्मचारी, पुलिस और वनाधिकारियों के द्वारा भी उनके साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा था। इसलिए इन इलाकों का युवा वर्ग नक्सलवादी और माओवादी संगठनों की ओर आकर्षित हुआ है। उसने अपने हाथों में हथियार उठा लिए हैं। वह प्रशासन या सरकार की दखल से इन इलाकों को मुक्त करना चाहता है। इसलिए आए दिन वह स्थानीय पुलिस, वनाधिकारी और सीआरपीएफ के जवान पर हमलें कर रहा है। अपने ही देशवासियों का खून कर रहा है। परंतु इस युवा वर्ग का यूं हाथों में हथियार उठाना और अपने ही देश के जवानों पर घात लगाकर हमला करना क्या जायज है ? क्या

Scanned by CamScanner

जवानों का खून करना आदिवासी जीवन की पहचान है? क्या जवान आदिवासी समुदायों के दुश्मन हैं ? आदि सवालों का उत्तर अर्थात् नहीं के रुप में ही आता है। जवान उनके दुश्मन न होकर रक्षक हैं। वे अपने प्राणों की बाजी लगाकर देश की रक्षा कर रहे हैं। क्यों वे अपने ही भाईयों पर खामखाह गोलियां चलाएंगे? इस पर सभी भटके हुए आदिवासी एवं पिछड़े वर्ग के युवाओं को जरुर सोचना चाहिए और प्रशासन के साथ मेलजोल करके सामान्य जीवन जीने की ओर पहल करनी चाहिएं। इस तथ्य को भी समझना चाहिए कि भारत को कमजोर बनाने के लिए कई विदेशी ताकतें लगी हुई हैं। ये ताकतें भारत को शांति पूर्ण तरीके से रहने देना नहीं चाहती हैं। इसके पीछे उनके कई मकसद हैं। सबसे प्रमुख यह कि ये ताकतें भारत को एशिया की सबसे बड़ी बाजार मंडी समझती हैं। इसलिए वे अपने हथियार यहां बेचकर पैसा कमाना चाहती हैं और भारत में विघटन, हिंसा और अलगाव निर्माण करके उसकी प्रगति को रोकना चाहती है। इस कारण वे कई हिंसावादी संगठनों को अप्रत्यक्ष रुप से मद्द कर रही हैं। विदेशी ताकतों की इन जालसाजियों में फंसकर आदिवासी युवा नक्सलवादी और माओवादी बनकर अपने ही देश के खिलाफ लड़ने लगा है। इस बाबत उपन्यासकार लिखते हैं कि "अमेरिका और यूरोप के कुछ अमीर देश ऐसे थे, जो व्यापारी देशों में बदल गए थे और तीसरी दुनिया के समाजों को उन्होंने अपनी मंडियों में तब्दील करके उन्हें उथल–पुथल, विघटन, हिंसा और अपने दलालों से भर दिया था। एक–एक कर उन समाजों और अतीत के उन सार्वभौम देशों के सारे पुर्जे, सारे अंग, सारे अवयव विखंडित होकर एक–दूसरे से टकरा रहे थे। बिखर रहे थे।"५ अत: आदिवासी एवं पिछड़े वर्गों के युवाओं को विदेशी ताकतों के इन मकसदों को समझकर अपने हथियार ड़ाल देने चाहिए। चूंकि हिंसा से कभी भी परिवर्तन नहीं आता। अहिंसात्मक मार्ग से ही परिवर्तन संभव है और प्रगति की राहें भी खुलती हैं। इतिहास इसका गवाह है। केवल अपने ही पक्ष को सही मानकर प्रशासन का विरोध करना सरासर गलत है। प्रशासन की भावनाएं और विचार भी समझने चाहिए। भले ही प्रशासन की कुछ खामियां रही हों या उसकी ओर से अन्याय–अत्याचार हुए हों। फिर भी कई मायने में आदिवासी जीवन के उत्थान में उसका योगदान निश्चित ही सराहनीय रहा है। इसे नकारा नहीं जा सकता। सरकारें और प्रशासन की ओर से समय–समय पर आदिवासी जीवन के उत्थान के लिए अनेक योजनाएं बनाई गई हैं और कई योजनाएं लागू भी हो चुकी हैं। कई कानून भी बनाए गए हैं और उन्हें लागू भी गया है। इनका फायदा भी देखने को मिल रहा है। इसकी ओर भी आदिवासी युवा वर्ग का ध्यान जरुर जाना चाहिए।

आदिवासी युवाओं का यह सोचना कि कुछ ही सालों में सरकार ने हमारा विकास भी शहरी लोगों की तरह करना चाहिए। यह गलत है। क्योंकि इस तरह का विकास चंद सालों में नहीं आता है। इसके लिए दोनों ओर से कई सालों तक निरंतर प्रयास करने होंगे। आदिवासियों को सब्र एवं धैर्य से काम लेकर अहिंसात्मक तरीके से सरकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना होगा। अच्छी शिक्षा ग्रहण करके उच्च पदों पर अधिक–से–अधिक मात्रा में जाना होगा। तभी वे अपने समुदायों का जलद गति से अधिक मात्रा में विकास कर पाएंगे। यूं हाथों में हाथियार उठाकर यह समझना कि अपना ही राज कायम होगा। ऐसा नहीं हो सकता। दूसरी ओर सरकारों एवं नौकरशाहों को भी यह आवश्यक है कि वे अपने ही देशवासी आदिवासी, पिछड़े या दलित वर्गों की ओर ईमानदारी से ध्यान दें। भ्रष्ट व्यवस्था के चलते और संवर्ण लोगों की संकीर्ण मानसिकता के कारण आदिवासियों पर अनेक अन्याय–अत्याचार हुए हैं। ऐसे अत्याचारों को सक्ती से रोके। इन कमजोर वर्गों के लिए रोजगार के साधन उपलब्ध कराने में कोई कोताई न बरतें। इन्हें समझाएं कि इनके जंगलों पर लगने वाले विविध कारखानें इनकी प्रगति में बाधक न होकर

Scanned by CamScanner

हितकारी ही हैं। इन कारखानों में आदिवासी समुदायों को प्राथमिकता दें। विविध परियोजनाओं से विस्थापित आदिवासियों का ठीक ढ़ंग से पुनर्विस्थापन करें। तब जाकर आदिवासी समुदाय सही मायने में मुख्य धारा में आएंगे और देश में अमन, चैन और शांति फैलेगी। एक तरह से देश का उचित विकास होगा।

निष्कर्षत:

कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास में उदयप्रकाश जी ने आदिवासियों की खूबियों और खामियों तथा उन पर हो रहे अन्याय–अत्याचारों को यथार्थता के साथ व्यक्त किया है। इसके पीछे उनका यह प्रयोजन रहा है कि आदिवासी तथा पिछड़े वर्गों पर हो रहे अन्याय–अत्याचार रुक जाए और उनके जीवन में भी अन्य वर्गों के जीवन की तरह उचित परिवर्तन आ जाए!

संदर्भ सूची:

१) पीली छतरी वाली लड़की–उदयप्रकाश, पृ. १० (तृतीय संस्करण: २०११, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।)
२) वही, पृ. १४
३) वही, पृ. २७
४) वही, पृ. ५३
५) वही, पृ. ९१

२१ शती के उपन्यास में आदिवासी विमर्श ('ग्लोबल गाँव के देवता' के संदर्भ में)

शोधार्थी
चव्हाण स्वाती विष्णू
हिंदी विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे

२००९ में प्रकाशित रणेंद्रजी द्वारा लिखित उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' 'यह उपन्यास मुख्य रूप से असुर जाति की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। उपन्यास का आरंभ छत्तीसगढ़ के बिरवे जिला कीकट प्रदेश कोयला बीघा का भौरापाट में अवासीय विद्यालय में लेखक को विज्ञान अध्यापक की नौकरी मिली है। यह अवासीय विद्यालय पहाड़ के ऊपर जंगलों के बीच है। इसका नाम है– पी–टी–जी गर्ल्स रेजिडेंशियल स्कूल प्रिमिटिव ट्राइब्ज आदिम जनजाति परिवार की बच्चियों के लिए अवासीय विद्यालय में उसे पढ़ाना है! झारखंड के इस परिवेश की आदिवासी जनजाति का नाम है–''असुर असुरों के बारे में लेखक की धारणा थी कि खूब लंबे– चौड़े–काले–कलूटे भयानक दाँत–वाँत निकले हुए माथे पर सींग–वींग लगे हुए लोग होंगे। लेकिन सालचन को देखकर सब उलट–पुलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियाँ उलटी घूम रही थी।''१

असुर झारखंड की यह अत्यंत प्राचीन अल्पसंख्यक जनजाति है। इनके नामों का उल्लेख ऋग्वेद एवं अन्य वैदिक साहित्य में भी मिलता है। वैदिक साहित्यों असुरों को 'रूद्र' के रूप में भी

Scanned by CamScanner

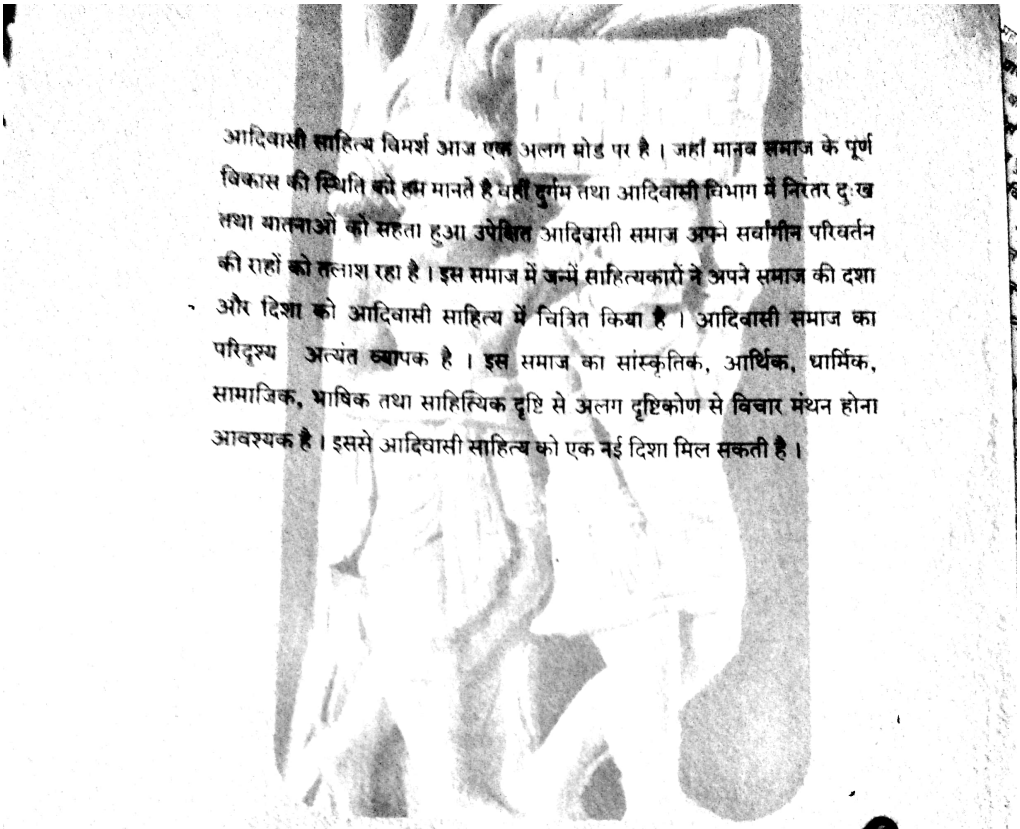

आदिवासी साहित्य विमर्श आज एक अलग मोड पर है । जहाँ मानव समाज के पूर्ण विकास की स्थिति को हम मानते है वहीं दुर्गम तथा आदिवासी विभाग में निरंतर दुःख तथा यातनाओं को सहता हुआ उपेक्षित आदिवासी समाज अपने सर्वांगीन परिवर्तन की राहों को तलाश रहा है । इस समाज में जन्में साहित्यकारों ने अपने समाज की दशा और दिशा को आदिवासी साहित्य में चित्रित किया है । आदिवासी समाज का परिदृस्य अत्यंत व्यापक है । इस समाज का सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, भाषिक तथा साहित्यिक दृष्टि से अलग दृष्टिकोण से विचार मंथन होना आवश्यक है । इससे आदिवासी साहित्य को एक नई दिशा मिल सकती है ।

Published By

Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.
At.Post.Limbaganesh, Tq.Dist.Beed-431 126
(Maharashtra) Mob.09850203295
E-mail: vidyawarta@gmail.com
www.vidyawarta.com

ISSN-2319 9318

Scanned by CamScanner